An International Peer Reviewed & Referred
INTERNATIONAL JOURNAL
OF EDUCATIONAL RESEARCH STUDIES

श्रीराम वनगमन का मूल्य आधारित चिंतन

डॉ0 प्रमिला मिश्रा

सहायक आचार्या,संस्कृत विभाग जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विष्वविद्यालय चित्रकूट (उ. प्र.)

प्रभु श्रीराम सांस्कृतिक पुरुष के रूप में भारतीय संस्कृति के परम आदर्श हैं। वैदिक संस्कृति की मर्यादा का सर्वोत्कृष्ट रक्षक होने के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। श्रीराम के वनगमन काल में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना का जो अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है उससे भारतीय संस्कृति सदैव गौरवान्वित रहेगी। श्री अयोध्या जी से श्रीलंका तक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने पदयात्रा करते हुए चोदह वर्षो में भारतीय संस्कृति के धर्म का परिपालन कर आदर्श धर्म प्रचारक की भूमिका का निर्वाह किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के वनगमन काल के ज्ञात लगभग तीन सौ स्थलों से पता चलता है कि उनका उद्देश्य सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना करना था। उन सभी स्थलों पर जाने का उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों को बल देना या पिछड़े उपेक्षित वनवासियों का आत्मबल जागृत करना तथा ऊँच–नीच का भेद–भाव मिटाना था। श्रीराम ने श्रंगवेरपुर में गंगातट पर पहुंच कर निषादराज गुह क यहाँ रात्रि विश्राम किया। और निषादराज से उनकी कुषलता पूछी। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णन प्राप्त होता है–

भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।।
दिष्टया त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च।।[1]

अर्थात् फिर श्रीराम ने अपनी दोनों गोल–गोल भुजाओं से गुह का अच्छी तरह आलिंगन करते हुये कहा– ''गुह सौभाग्य की बात है कि मैं आज तुम्हें बन्धु–बान्धवों के साथ स्वस्थ एवं सानन्द देख रहा हूँ। बताओ तुम्हारे राज्य में मित्रों के यहाँ तथा वनों में सर्वत्र कुषल तो है''।

श्रीराम उत्तर भारत और दक्षिण भारत की दो संस्कृतियों का समन्वय करने हेतु रामेष्वरम् में समुद्र तट पर रामसेतु का निर्माण करते हैं। अविरल प्रवाह वाली पुनीत सरिताओ की तरह नदियों के तटों की पदयात्रा करते हुए नदियों के किनारे स्थित आश्रमों एवं उससे पल्लवित संस्कृति को प्रवाहमान बनाते हैं। प्राचीनकाल में नदियों के किनारे ही संस्कृतियों का उदय एवं विस्तार हुआ। प्रभु श्रीराम ने अयोध्या से श्रीलंका तक नदियों के किनारे–किनारे ही यात्रायें की। अयोध्या में सरयू नदी, महर्षि वाल्मीकि ऋषि से तमसा नदी, मुनि भारद्वाज जी से गंगा के किनारे, यमुना के किनारे चलते हुए, महर्षि अत्रि जी से मंदाकिनी नदी के तट पर, देवी शबरी से तुंगभद्रा के किनारे, लोमश ऋषि से दण्डकारण्य में महानदी के किनारे, नासिक पंचवटी में गोदावरी के किनारे, श्रीलंका–कावेरी के तटों की यात्रायें कर वहॉ की संस्कृतियों का पोषण किया।

नर्मदा नदी को कुवॉरी माना जाता है और पूज्य सन्त लोग नर्मदा की परिक्रमा करते हैं तथा उसे पार नहीं करते। नर्मदा भगवान सूर्य की पुत्री हैं। भगवान श्रीराम भी सूर्यवंशी हैं। जिस कारण उस समय की मान्यतानुसार नर्मदा जी को पार नहीं किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीराम ने परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यो का सम्मान किया।

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति की मान्यताओं का जगह–जगह सम्मान और उनकी स्थापना करते हैं। भगवान श्रीराम अपने पिता का श्राद्ध संस्कार पवित्र नदियों–सरोवरों एवं तीर्थों में करते हैं। चित्रकूट में मंदाकिनी में पृथ्वीपालक श्रीराम ने जल से भरी हुयी अंजलि ले दक्षिण दिषा की ओर मुंह करके रोते हुये इस प्रकार कहा–

एतत् ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम्।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु।।[2]

अर्थात् मेरे पूज्य पिता राजषिरोमणि महाराज दषरथ ! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोक में गये हुये आपको अक्षय रूप से प्राप्त हो। इसके बाद मंदाकिनी के जल से निकलकर किनारे पर आकर तेजस्वी श्रीरघुनाथ जी ने अपने भाइयों के साथ मिलकर पिता के लिये पिण्डदान किया।

ततो मंदाकिनी तीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः।
पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह।।[3]

सोन तथा महानदो के पवित्र संगम में पिता के आत्मकल्याण हेतु भारतीय संस्कृति की मान्यता के अनुसार श्राद्ध तर्पण करते हैं। आज भी लोग इन स्थानों पर इसी कारण से श्राद्ध करते हैं। नासिक के पास स्थित कुशावर्त तीर्थ मे भी पिता का श्राद्ध–संस्कार किया।[5] गीधराज

जटायु की मृत्यु पर भी भगवान श्रीराम यथोचित मरणोत्तर श्राद्ध–संस्कार जलाँजलि प्रदान करते हैं। जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड से प्राप्त होता है।

शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृधाय राघवौ।

स्नात्वा तौ गृधराजाय उदकं चक्रतुस्तदा।।[4]

अर्थात् रघुकुल के उन दोनों महापुरुषो ने गोदावरी में नहाकर 'षास्त्रीय विधि स उन गृधराज के लिये उस समय जलाँजलि का दान किया। इतना ही नहीं जिन अदाततताइयों का वध करते हैं उनका भी उनके विधि अनुसार मरणोत्तर संस्कार करने का निर्देश देते हैं।

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।[5]

श्रोराम बोले–'विभीषण! वैर जीवन–काल तक ही रहता है। मरने के बाद उस वैर का अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, अतः अब तुम इसका संस्कार करो। इस समय यह जैसे तुम्हारे स्नेह का पात्र है, उसी तरह मेरा भी स्नेहभाजन है'।

वैदिक संस्कृति के मान्यतानुसार ब्राम्हण का वध नहीं करना चाहिए। ब्राम्हण वध करने पर ब्रम्हहत्या का पाप लगता हैं। खर–दूषण, त्रिसिरा का वध करने पर ब्रम्ह हत्या स्वीकार कर उसके निवारण हेतु एक सौ आठ शिवलिंगों की स्थापना करते हैं। रावण भी ब्राम्हण है जिसके वध के पहल अपने इष्ट देवता भगवान शिव की रामेश्वरम में स्थापना करते हैं। अयोध्या वापस जाने पर रावण के वंश का संहार करने एवं ब्रम्ह हत्या दूर करने हेतु विराट अश्वमेध महायज्ञ का आयोजन श्री अयोध्या जी में करते हैं।[6]

वैदिक संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है जो आरण्यकों, और ऋषि–आश्रमों में ही पल्लवित हुई। भगवान श्रीराम इन ऋषियों के सानिध्य में बैठकर गहन–चिन्तन, मनन कर समस्या का निवारण करने हेतु साहसिक प्रयत्न करते हैं। चित्रकूट में खर–दूषण के आतंक से प्रभावित ऋषियों की दशा को देखकर द्रवित होते हैं और कठिन संकल्प लेते हैं **'निशिचर हीन करहु महि भ्ज उठाय प्रण कीन्ह'** इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आसुरी संस्कृति से सबसे अधिक प्रभावित दण्डकारण्य को अपना कार्य क्षेत्र बनाते है और पूरे वनवास काल में संघर्षरत रहते हैं। बहुत से राजर्षि और महषि अगस्त्य आदि महर्षि मिलकर श्री राम के पास आये और श्रीराम से इस प्रकार बोले–

एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम्।

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज।।

स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेशु महर्षयः।[7]

अर्थात् 'मुनियों के 'षत्रुरूप इन पापाचारी राक्षसों के वध के लिये ही आपका यहाँ 'षुभागमन आवष्यक समझा गया था। दषरथनन्दन! आपन हम लोगों का यह बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर दिया। अब बड़े–बड़े ऋषि–मुनि दण्डकारण्य के विभिन्न प्रदेषों में निर्भय होकर अपने धर्म का अनु"ठान करेंगे। भगवान श्रीराम नित्य संध्यावन्दन एवं अपने इष्टदेव की उपासना भी करते हैं। भगववान श्रीराम ब्रम्ह परमेश्वर हैं फिर भी भारतीय संस्कृति की मान्यतानुसार नित्य इष्टदेव की उपासना आवश्यक है। श्रीराम ने जाबालि के नास्तिक मत का खण्डन करके आस्तिक मत को स्थापित किया।

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः।

मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः।।[8]

अर्थात् 'जो पुरुष धर्म अथवा वेद की मर्यादा को त्याग देता है, वह पापकर्म में प्रवृत्त हो जाता है। उसके आचार और विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं; इसलिये वह सत्पुरुषों में कभी सम्मान नहीं पाता है'।

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।

तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।[9]

अर्थात् 'सत्य का पालन ही राजाओं का दया प्रधान धर्म है– सनातन आचार है, अतः राज्य सत्य स्वरूप है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रति"ठित है। क्योंकि राजाओं के जैसे आचरण होते हैं प्रजा भी वैसे ही आचरण करने लगती है। ऋषियों और देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है इस लोक में सत्यवादी मनुष्य अक्षय परमधाम में जाता है। सेतुबन्ध में रामेश्वरम शिवलिंगों की स्थापना करते हैं। भगवान श्रीराम के इस कार्य से उन दिनों के शैव और वैष्णवमतों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित होता है। इसलिए शिव उपासना को अपनी दिनचर्या में शामिल करते हैं। श्रीराम तीर्थो को पूर्ण महत्व देते हैं और उनमें श्रद्धा–पूर्वक स्नान करते हुए एवं उनके महत्व को स्थापित करते हैं। प्रयागराज में अक्षयवट की माता सीता पूजन करती है।

न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत।

नमस्तऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्।।[10]

अर्थात् वट के समीप पहुँचकर विदेहनन्दिनी सीता ने उसे मस्तक झुकाया और इस प्रकार कहा–'महावृक्ष! आपको नमस्कार है। आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पतिदेव अपने वनवास वि"ायक व्रत को पूर्ण करें। यमुना नदी के षीतल जल में स्नान आदि करके ऋषि–मुनियों द्वारा सेवित रमणीय एवं मनोरम पर्वत चित्रकूट पर जा पहुँच।[11]

चित्रकूट में परम पावन मंदाकिनी में श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं। चित्रकूट में प्रवेश कर सर्वप्रथम वाल्मीकि ऋषि से मिलकर अपने निवास का परामर्श करते है तथा चित्रकूट में पर्णकुटी बनाकर विधिवत वास्तु देवता एवं सभी देवताओं का पूजन सम्पन्न करके ही पर्णकुटी में प्रवेश करते हैं। श्री राम सुमित्राकुमार से कहते हैं कि–

ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्।

कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः।।[12]

'सुमित्राकुमार! हम गजकन्द का गूदा लेकर उसी से पर्णषाला के अधि"ठाता देवताओं का पूजन करेंगे; क्योंकि दोर्घ जीवन की इच्छा करने वाले पुरुषों को वास्तु षांति अवष्य करानी चाहिए।

इस प्रकार भगवान श्री राम अपने वनगमन काल में भारतीय संस्कृति निष्ठ धर्म दर्शन का स्वयं आचरण करते हुए दूसरों की भी अपने जीवन में धारण करने की प्रेरणा देते हैं। भारतीय संस्कृति की मान्यता के अनुसार यही अवतार का प्रयाजन भी है। जिसे पूर्णरूपेण सार्थक सिद्ध करक भारतीय संस्कृति के प्रेरणा पुरुष बनते हैं।

सन्दर्भ–

वाल्मीकि रामायण 2/50/41–42

वही, 2/103/27

वही, 2/103/28

वही, 3/68/36

वही, 6/109/25

वही, 7/83/5

वही, 3/30/36

वही, 2/109/3

वही, 2/109/10

वही, 2/55/24

वही, 2/56/12

वही, 2/56/22